इष्टोपदेश

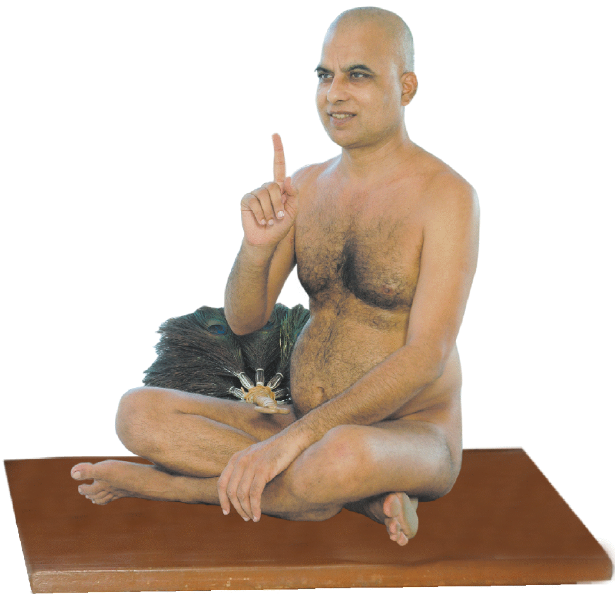

: अन्वयार्थ एवं भावार्थ :-

प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य, युगप्रमुख श्रमणाचार्य,

श्री108 डॉ. विरागसागरजी महाराज

-: प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

जैन कीर्तिस्तम्भ, बस स्टैण्ड रोड, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज के ''राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव'' वर्ष 2016-2017 के सुअवसर पर

कृति : इष्टोपदेश

अन्वार्थ एवं
भावार्थ : परम पूज्य युगप्रगुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज

संस्करण : प्रथम 2016, भिण्ड (म.प्र.)

प्रतियाँ : 1000

पुण्यार्जक : श्रीमान् महेन्द्रजी-श्रीमती मायादेवी जैन
संजय, सुमन, जयपुर (राज.)

मूल्य : 20.00

प्राप्ति स्थान :
1. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ चैत्यालय मंदिर, बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.) संपर्कसूत्र-पं. वीरेन्द्र जैन, मो. 9754803220
2. आचार्य श्री विरागसागर विद्यापीठ (बी.एड. कॉलेज)
पुष्प विहार कॉलौनी, बीना- 470113, जिला- सागर (म.प्र.)
मो 9425135816
3. विराग फाउण्डेशन
सी/ओ, श्री अरुण कोटडिया, 11-ए. विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद- 380013 (गुज.)
मो 9825900124
4. श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह
13, वृंदावन सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुज.)
मो 9898494914, 9829452020
5. विराग महिला मंच, बोरीवली, मुंबई (महा.)
6. पुष्पा जी, जयपुर (राज.)
7. तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
8. पंकज जैन, विराग युवा मंच, इन्दौर (म.प्र.)

मुद्रक : तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर मो. 9314962474/75

जीवन की महत्त्वपूर्ण झांकियाँ
परम पूज्य गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महाराज

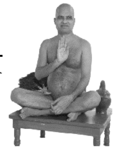

पूर्व नाम	:	अरविन्द जैन (टिन्नू)
जन्म	:	2 मई, 1963, गुरुवार (वैशाख शुक्ला 9, संवत् 2020, पथरिया)
माता-पिता	:	श्रीमती श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ पू. श्रमणी आर्यिका विशांतश्री माताजी) ब्र.श्री कपूरचन्दजी जैन (संघस्थ पू.क्षुल्लक श्री 105 विश्ववंद्य सागर जी महाराज)
बहिन	:	श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन
भाई	:	श्री विजयकुमार, श्री सुरेन्द्रकुमार, बा.ब्र. श्री नरेन्द्र भैयाजी
लौकिक शिक्षा	:	इण्टर मध्यमा (पथरिया, श्री शांति निकेतन, दि.जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी, म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	20 फरवरी, 1980 (फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुद्वार, शहडोल म.प्र.)
नामकरण	:	पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्णसागरजी महाराज
क्षु. दीक्षा गुरु	:	प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मतिसागर जी महा.
मुनि दीक्षा	:	9 दिसम्बर, 1983 (मगसर शु. 5 वि.सं. 2040), औरंगाबाद (महा.)
मुनि दीक्षा गुरु	:	प.पू.निमित्तज्ञानी आचार्य श्री 108 विमलसागरजी महाराज
आचार्य पद	:	8 नवम्बर, 1992 (का. शु. 13वि.सं. 2049) रविवार, द्रोणगिरी
संयमी सृजन	:	आचार्य-8, मुनि - 70, गणिनी आर्यिका-4, आर्यिका-64, ऐलक-5, क्षुल्लक -29, क्षुल्लिका- 23 कुल - 203
प्रशिष्य	:	100 से अधिक
समाधि सल्लेखनाएँ	:	लगभग 85 एवं अनेक तिर्यंच प्राणी
चातुर्मास	:	1980 से 2016 तक क्रमशः दुर्ग (छत्तीसगढ़), नागपुर (महाराष्ट्र), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), कारंजालाड (महाराष्ट्र), नागपुर (महाराष्ट्र), भावनगर (गुजरात), पाँचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), बीना (म.प्र.), ललितपुर (म.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), शिखरजी (झारखण्ड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छत्तीसगढ़), कारंजालाड (महा.) मूडबिद्री (कर्नाटक), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू), उद्गांव

(महा.), मुम्बई (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इन्दौर (म.प्र.), श्रेयांसगिरी (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.)।

साहित्य सृजन : 1. बारसाणुवेक्खा ग्रन्थ पर 1100 पृष्ठीय "सर्वोदया" संस्कृत टीका, 2. रयणसार ग्रन्थ पर 1500 पृष्ठीय "रत्नत्रयवर्धिनी" संस्कृत टीका, श्रमण संबोधनी टीका लेखन जारी है, 3. अनेक शोधात्मक, चिन्तनशील, बालकोपयोगी कथा, अनुवाद, गद्य, संपादित साहित्य, जीवनी एवं प्रवचन साहित्य 150 से अधिक ग्रंथ।

पंचकल्याणक : लघु वृहद् मिलाकर-67

उपाधियाँ : डॉक्ट्रेट आदि 44 से अधिक

सिद्धांत वाचनाएँ : धवल ग्रन्थ की 16 पुस्तकें तथा जयधवल ग्रंथ की 6 पुस्तकें, शेष जारी हैं।

गोष्ठियाँ : विद्वत, शिक्षक, प्राचार्य, न्यायाधीश-वकील, डॉक्टर्स, शासनिक।

अहिंसा, शाकाहार एवं व्यसन मुक्ति

अभियान : भिण्ड (म.प्र.), बीना (म.प्र.), भिलाई (छ.ग.), कारंजा (महा.), मेलचित्तामूर (तमिल.), उदगाँव (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इन्दौर (म.प्र.) श्रेयांसगिरि (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), जिसमें 18 लाख से अधिक छात्र-छात्रायें व्यसनमुक्त, शाकाहारी एवं अहिंसा के उपासक बन चुके हैं।

शिविर : प्रतिवर्ष श्री विराग सम्यग्ज्ञान शिविर, प्रतिभा संस्कार शिविर, पूजन प्रशिक्षण शिविर, भक्तामर शिविर, श्रावक संस्कार शिविर आदि।

विशेष प्रवचन : कॉलेज, स्कूल, जेल, न्यायालय, गौशाला, वृद्धाश्रम, गुरुकुल, मुख्य चौराहे आदि पर हुए।

जेल प्रवचन : भिण्ड, टीकमगढ़, दुर्ग, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, जयपुर, अजमेर, इन्दौर, पन्ना, दमोह।

न्यायालय प्रवचन: अजमेर

पगविहार : 70,000 किलोमीटर से अधिक।

संघ सम्मेलन : भिण्ड, श्रेयांसगिरी, बीना, ललितपुर, श्रवणबेलगोला, औरंगाबाद, जयपुर।

वृहद् यति सम्मेलन:
एवं युगप्रतिक्रमण जयपुर (200 शिष्य-प्रशिष्य, अन्य साधु भी)
श्रमण-श्रमणी की प्राचीन परम्परा की पुन: स्थापना।

इष्टोपदेश

(श्रीमद्देवनन्द्यपरनामपूज्यपादस्वामिविरचित)

मंगलाचरण

यस्य स्वयं स्वभावाप्ति,-रभावे कृत्स्न-कर्मणाः।
तस्मै-संज्ञानरूपाय, नमोऽस्तु परमात्मने।।1।।

अन्वयार्थ- **(यस्य)** जिनके **(कृत्स्न)** सम्पूर्ण **(कर्मणाः)** कर्म **(अभावे)** अभाव हो जाने से **(स्वयं)** स्वतः ही **(स्वभावाप्तिः)** स्वभाव की प्राप्ति हो गई है **(तस्मै)** उन **(संज्ञान रूपाय)** अनंतज्ञान स्वरूप **(परमात्मने)** परामात्मा को **(नमः)** नमस्कार **(अस्तु)** हो।

अर्थ-जिसके सम्पूर्ण कर्म अभाव हो जाने से स्वतः ही स्वभाव की प्राप्ति हो गई है। उन अनन्त ज्ञान **(केवल ज्ञान)** स्वरूप परमात्मा को नमस्कार हो।

निमित्तोपादान से सिद्धि

योग्यो-पादान-योगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादि-स्वादि-सम्पत्ता, वात्मनोऽप्यात्मता मता।।2।।

अन्वयार्थ- **(योग्योपादान)** योग्य उपादान के **(योगेन)** योग से **(दृषदः)** स्वर्ण पाषाण **(स्वर्णता)** स्वर्णपने को **(मता)** (प्राप्त हुआ) माना गया है (उसी तरह) **(द्रव्यादि स्वादि)** स्व द्रव्य, क्षेत्र आदि की **(सम्पत्ता)** प्राप्ति होने से **(आत्मनो)** आत्मा **(अपि)** भी **(आत्मता)** परमात्मपने को प्राप्त हुआ **(मता)** माना गया है।

अर्थ- योग्य उपादान के योग से स्वर्ण पाषाण स्वर्णपने को प्राप्त हुआ माना गया है, उसी प्रकार से स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति होने से आत्मा भी परमात्मपने को प्राप्त हुआ माना गया है।

व्रतों की सार्थकता

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतै-र्वत नारकं।
छाया-तपस्थयो-र्भेदः, प्रतिपाल-यतोर्महान्।।3।।

अन्वयार्थ- **(व्रतैः)** व्रत से **(दैवं पदं)** देव पद प्राप्त करना **(वरं)** श्रेष्ठ है **(अव्रतैः)** अव्रत से **(नारकम्)** नरक में उत्पन्न होना **(वत)** हाय (खेदवाचक शब्द) **(वरं न)** श्रेष्ठ नहीं है **(छाया तपस्थ्योः)** छाया तथा धूप में बैठने वाले पुरूषों के समान **(प्रतिपालयतोः)** व्रत और पापाचरण के प्रतिपालन में **(महान्)** बहुत बड़ा **(भेदः)** अन्तर है।

अर्थ-व्रत से देव पद पाना श्रेष्ठ है, अव्रत से नरक में उत्पन्न होना हाय (खेद वाचक शब्द) श्रेष्ठ नहीं है। छाया और धूप में बैठने वाले पुरुषों के समान व्रत और पापाचरण के प्रतिपालन में बहुत बड़ा अन्तर है।

शिवप्रद भावों से स्वर्ग सहज ही

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूर-वर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूति, क्रोशार्द्धे किं स सीदति।।4।।

अन्वयार्थ- **(यत्र)** जो (जहाँ) (आत्मा के) **(भावः)** भाव **(शिवं)** मोक्ष को **(दत्ते)** प्रदान करते हैं (तो उन भावों द्वारा) **(द्यौः)** स्वर्ग पाना **(कियद्दूर वर्तिनी)** कितनी दूर है **(यो)** जो **(गव्यूति)** दो कोस तक **(आशु)** शीघ्र **(नयति)** ले जाता है **(सः)** वह **(क्रोशार्द्धे)** आधा कोश ले जाने में **(किं)** क्या **(सीदति)** दुःखी होता है।

अर्थ- जो (आत्मा के) भाव मोक्ष को प्रदान करते हैं (तो उन भावों द्वारा) स्वर्ग पाना कितनी दूर है। जो (व्यक्ति कोई वस्तु) दो कोस तक शीघ्र ले जाता है वह आधा कोश ले चलने में क्या दुःखी होता है? अर्थात् नहीं होता है।

स्वर्ग सुख का कथन

हृषीकज-मनातङ्कं, दीर्घ-कालोप-लालितम्।
नाके नाकौ-कसां सौख्यं, नाके नाकौ-कसामिव।।5।।

अन्वयार्थ- **(नाके)** स्वर्ग में **(नाकौकसाम्)** देवों को **(हृषीकजं)** पाँचों इन्द्रियों से उत्पन्न **(अनातङ्कं)** निश्चिन्त (विघ्न से रहित) **(दीर्घकाल)** दीर्घकाल तक **(उपलालितम्)** प्राप्त हुआ **(सौख्यं)** सुख **(नाके)** स्वर्ग के **(नाकौकसाम्)** देवों की **(इव)** तरह होता है।

अर्थ- स्वर्ग में देवों को पांचों इन्द्रियों से उत्पन्न निश्चिन्त (विघ्न से रहित) दीर्घ काल तक प्राप्त हुआ सुख स्वर्ग के देवों की तरह होता है।

इन्द्रिय सुख-दुःख भ्रान्ति मात्र

वासना-मात्र-मेवैतत्, सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयंत्येते, भोगा रोगा इवा-पदि।।6।।

अन्वयार्थ- **(देहिनाम्)** संसारी प्राणियों के **(एतत्)** यह **(सुखं)** इन्द्रिय सुख **(च)** और **(दुःखं)** दुःख **(वासना)** कल्पना **(मात्रम्)** मात्र **(एव)** ही है **(तथा हि)** उसी प्रकार **(एते)** ये (यह) **(भोगा)** भोग **(आपदि)** आपत्ति के समय **(रोगा इव)** रोग के समान **(उद्वेजयन्ति)** दुःख को उत्पन्न (व्याकुल) करते हैं।

अर्थ- संसारी प्राणियों के यह इन्द्रिय सुख और दुःख कल्पना मात्र ही है (उसी प्रकार) ये (यह) भोग आपत्ति के समय रोग के समान दुःख को उत्पन्न (व्याकुल) करते हैं।

मोहावृत ज्ञान वस्तु-स्वरूप नहीं जानता

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्-पदार्थानां यथा मदन कोद्रवैः।।7।।

अन्वयार्थ- **(मोहेन)** मोह से **(संवृतं)** आवृत **(ज्ञानं)** ज्ञान **(हि)** निश्चय से **(स्वभावं)** स्वभाव को **(लभते)** प्राप्त **(न)** नहीं होता **(यथा)** जैसे **(मदन कोद्रवैः)** नशीले कोदों के खा लेने से **(मत्तः)** प्रमत्त हुआ **(पुमान्)** पुरुष **(पदार्थानां)** पदार्थों को नहीं जान पाता।

अर्थ- मोह से आवृत ज्ञान निश्चय से स्वभाव को प्राप्त नहीं होता जैसे- नशीले कोदों के खा लेने से प्रमत्त हुआ पुरुष पदार्थों को नहीं जान पाता।

मोही परपदार्थ को अपना मानता है

वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्य-स्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते।।8।।

अन्वयार्थ- **(वपुः)** शरीर **(गृहं)** घर **(धनं)** धन **(दाराः)** स्त्री **(पुत्रा)** पुत्र **(मित्राणि)** मित्र **(शत्रवः)** शत्रु **(सर्वथा)** सब तरह से **(अन्य)** अन्य **(स्वभावानि)** स्वभाव वाले हैं परन्तु **(मूढः)** मोही (**अज्ञानी**) प्राणी इन्हें **(स्वानि)** अपना **(प्रपद्यते)** मानता (समझता) है।

अर्थ- शरीर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु सब तरह से अन्य (पर) स्वभाव वाले हैं परन्तु मूढ (अज्ञानी) प्राणी उन्हें अपना मानता (समझता) है।

संसारी जीव का कुटुम्ब परिवार कैसा है

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्व-स्व कार्य वशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे।।9।।

अन्वयार्थ- **(दिग्देशेभ्यः)** दिशाओं और देशों से **(खगा)** पक्षी **(एत्य)** आकर **(नगे-नगे)** वृक्ष-वृक्ष पर **(संवसन्ति)** निवास करते हैं तथा **(प्रगे-प्रगे)** प्रातः काल **(स्व-स्व कार्य)** अपने-अपने कार्य के **(वशात्)** वश से **(देशे)** देशों में **(दिक्षु)** दिशाओं, (स्थानों) में **(यान्ति)** चले जाते हैं।

अर्थ- दिशा-विदिशाओं से पक्षी आकर वृक्ष-वृक्ष पर रात्रि में निवास करते हैं और प्रातः काल (होते ही) अपने-अपने कार्य के वश से दिशाओं-विदिशाओं में चले जाते हैं।

अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परि-कुप्यति।
त्रयङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां, स्वयं दंडेन पात्यते।।10।।

अन्वयार्थ- **(विराधकः)** अपकार करने वाला **(हन्त्रे)** मारने वाले **(जनाय)** मनुष्य के लिये **(कथं)** क्यों **(परिकुप्यति)** क्रोध करता है **(त्रयङ्गुलं)**

तीन अंगुल (फावड़े) आदि का भूमि पर **(पातयन्)**, (खोदने के लिये) गिरता हुआ मनुष्य, **(पद्भ्यां)** पैरों से **(स्वयं)** स्वयं **(दंडेन)** बेंत द्वारा **(पात्यते)** गिराया (झुकाया) जाता है।

संसार में जीव किस तरह घूमता है

रागद्वेष द्वयी-दीर्घ-नेत्रा-कर्षण कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।।11।।

अन्वयार्थ- **(जीवः)** संसारी जीव **(रागद्वेष)** रागद्वेष रूपी **(द्वयीदीर्घ)** दो लम्बी **(नेत्रा)** रस्सी के द्वारा **(कर्मणा)** कर्मों को **(आकर्षण)** ग्रहण करता है और **(अज्ञानात्)** अज्ञान से **(संसार)** संसार **(अब्धौ)** समुद्र में **(सुचिरं)** चिरकाल तक **(भ्रमति)** भ्रमण करता है।

अर्थ- संसारी जीव राग-द्वेष रूपी दो लम्बी रस्सी के द्वारा कर्मों को ग्रहण करता है। और अज्ञान से संसार समुद्र में चिरकाल तक भ्रमण करता है।

कोई न कोई विपत्ति मौजूद ही रहती है

विपद्-भव-पदा-वर्ते, पदिके-वाति वाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः, प्रचुराः विपदः पुरः।।12।।

अन्वयार्थ- **(भव)** संसार में **(पदावर्ते)** पैर से चलने वाली **(पदिके)** घटी यंत्र (रहट) के **(इव)** समान **(यावत्)** जब तक **(विपद्)** एक विपत्ति **(अतिवाह्यते)** समाप्त होती है **(तावत्)** तब तक **(अन्याः)** दूसरी **(प्रचुराः)** बहुत रूप में **(विपद्ः)** **(पुरः)** आगे **(भवन्ति)** होती है खड़ी हो जाती है।

अर्थ-संसार में पैर से चलने वाली घटीयंत्र (रहट) के समान जब तक एक विपत्ति समाप्त होती है तब तक दूसरी बहुत रूप में (विपत्तियाँ) आगे खड़ी हो जाती है।

हर हाल में धन दुःखकर

दुरर्ज्येनासुरक्षेण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थं मन्योजनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा।।13।।

अन्वयार्थ- **(दुरर्ज्येन)** बड़ी कठिनाई से अर्जन होने वाले **(असुरक्षेण)** सुरक्षित न रहने वाले **(नश्वरेण)** नाशवान **(धनादिना)** धन, पुत्रादिकों में **(कः)** कौन **(जनः)** पुरुष **(ज्वरवान्)** ज्वर से सहित होने पर **(अपि)** भी **(सर्पिषा)** घी पीने के **(इव)** समान अपने आप को **(स्वस्थं)** स्वस्थ (सुखी) **(मन्यो)** मानता है।

अर्थ- बड़ी कठिनाई से अर्जन होने वाले, सुरक्षित न रहने वाले, नाशवान, धन, पुत्रादिकों में कौन पुरूष ज्वर से सहित होने पर भी घी पीने के समान अपने आपको स्वस्थ (सुखी) मानता है? अर्थात् कोई नहीं।

संसारी प्राणी दूसरों का दुःख देखता है

विपत्ति मात्मनो मूढः परेषामिव नेक्षते।
दह्य-मान-मृगा-कीर्ण,-वनान्तर-तरूस्थवत्।।14।।

अन्वयार्थ-**(मृगाकीर्ण)** मृग आदि जीवों से भरे **(दह्यमान)** फैली हुई अग्नि से जलते हुए **(वनान्तर)** वन में **(तरूस्थवत्)** किसी वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य की तरह **(मूढ़ः)** मूर्ख जीव **(परेषां)** दूसरे की **(विपत्तिं)** विपत्ति के **(इव)** समान **(आत्मनः)** अपनी विपत्ति को **(न ईक्षते)** नहीं देखता है।

अर्थ- फैली हुई अग्नि से जलते हुए मृग आदि जीवों के समूह से युक्त वन में किसी वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य की तरह मूर्ख जीव दूसरे की विपत्ति के समान अपनी विपत्ति को नहीं देखता है।

लोभी को धन इष्ट है

आयुर्वृद्धि-क्षयोत्कर्ष, -हेतुं-कालस्य-निर्गमम्।
वांछतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्।।15।।

अन्वयार्थ- **(कालस्य)** काल के **(निर्गमं)** निकल जाने पर **(आयुर्वृद्धि)** आयु के क्षय **(और)** **(क्षयोत्कर्ष हेतुं)** धन की वृद्धि का कारण **(वांछतां धनिनां)** इच्छा वाले धनवान पुरुषों को **(सुतरां)** अच्छी तरह **(जीवितात्)** अपने जीवन से भी **(धनं इष्टम्)** धन का पाना इष्ट है।

अर्थ-काल के निकल जाने पर आयु के क्षय और धन की वृद्धि का कारण इच्छा वाले धनवान पुरूषों को अच्छी तरह अपने जीवन से भी धन का पाना इष्ट है।

त्याग के लिए संग्रह उचित नहीं

त्यागाय श्रेयसे वित्त,-मवित्तः संचिनोति यः।
स्व-शरीरं स पङ्के न, स्नास्या-मीति विलंपति।।16।।

अन्वयार्थ- **(यः)** जो **(अवित्तः)** धन से रहित (गरीब) **(त्यागाय)** त्याग करने के लिये **(वित्तम्)** धन का **(संचिनोति)** संचय करना **(श्रेयसे)** श्रेष्ठ मानता है **(स)** वह **(स्नास्यामि)** स्नान करूंगा **(इति)** इस विचार से **(स्वशरीरं)** अपने शरीर को **(पङ्केन)** कीचड़ से **(विलम्पति)** लीपता है।

अर्थ- जो धन से रहित **(गरीब)** त्याग करने के लिए धन का संचय करना श्रेष्ठ मानता है। वह 'स्नान करूंगा' इस विचार से अपने शरीर को कीचड़ से लीपता है।

हर स्थिति में भोग कष्टकर

आरम्भे तापकान्-प्राप्ता,-वतृप्ति-प्रति-पादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान्, कामं कः सेवते सुधीः।।17।।

अन्वयार्थ-**(कामान्)** जो विषय भोग **(आरम्भे)** आरम्भ में **(तापकान्)** ताप को **(प्राप्ता)** प्राप्त कराते हैं **(वतृप्ति)** अतृप्ति को (तृष्णा को) **(प्रतिपादकान्)** बढ़ाने वाले तथा **(अन्ते)** अन्त में **(सुदुस्त्यजान्)** बहुत कठिनाई से छूटते हैं ऐसे **(कामं)** काम को **(कः)** कौन **(सुधी)** बुद्धिमान पुरूष **(सेवते)** सेवन करेगा।

अर्थ-जो विषय भोग आरम्भ में ताप को प्राप्त कराते हैं एवं अतृप्ति (तृष्णा) को बढ़ाने वाले हैं तथा अन्त में बहुत कठिनाई से छूटते हैं ऐसे काम को कौन बुद्धिमान पुरूष सेवन करेगा? अर्थात् कोई नहीं करेगा।

अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ

भवन्ति प्राप्य यत्संग मशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस् तदर्थं प्रार्थना वृथा।।18।।

अन्वयार्थ- **(यत्संगं)** जिसका संयोग **(प्राप्य)** पाकर **(शुचीनि अपि)** पवित्र पदार्थ भी **(अशुचीनि)** अपवित्र **(भवन्ति)** होते हैं, और **(स कायः)**

वह शरीर **(संतत)** हमेशा **(अपायः)** विनाशीक है **(तदर्थं)** उसके लिये **(प्रार्थना)** प्रार्थना, (कामना करना) **(वृथा)** व्यर्थ है।

अर्थ-जिसका संयोग पाकर पवित्र पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं और वह शरीर हमेशा विनाशीक है उसके लिये प्रार्थना (कामना) करना व्यर्थ है।

उपकार/अपकार

यज्जीवस्योप-काराय, तद्देहस्याप-कारकम्।
यद्देहस्योप-काराय, तज्जीवस्यापकारकम्।।19।।

अन्वयार्थ- **(यत्)** जो **(जीवस्य)** जीव का **(उपकाराय)** उपकार के लिये होता है **(तत्)** वह **(देहस्य)** शरीर का **(अपकारकं)** अपकार करता है **(यत्)** जो **(देहस्य)** देह के **(उपकाराय)** उपकार के लिये होता है **(तत्)** वह **(जीवस्य)** जीव का **(अपकारकं)** अपकार करता है।

अर्थ- जो जीव के उपकार के लिये होता है वह शरीर का अपकार करता है जो देह के उपकार के लिये होता है वह जीव का अपकार करता है।

विवेकी किसमें आदर करें

इतश्चिन्ता-मणिर्दिव्य, इतः पिण्याक-खण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये, क्वाद्रियन्तां विवेकिनः।।20।।

अन्वयार्थ- **(इतः)** यहाँ **(दिव्यः)** दिव्य **(चिन्तामणिः)** चिन्तामणि रत्न है (और) **(इतः)** यहां **(पिण्याकखण्डकम्)** खली का टुकड़ा (मिलता) है **(चेत्)** यदि **(उभे)** दोनों ही **(ध्यानेन)** ध्यान के द्वारा **(लभ्ये)** प्राप्त होते हैं तो **(विवेकिनः)** विवेकी, बुद्धिमान **(क्व)** कहां, (किसमें) **(आद्रियन्तां)** आदर करेगा?

अर्थ- यहां दिव्य चिन्तामणि रत्न हैं और यहां खली का टुकड़ा (मिलता) है यदि दोनों ही ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो विवेकी (बुद्धिमान), किसमें (कहां) आदर करेगा? अर्थात् चिन्तामणि रत्न में ही आदर करेगा।

आत्मा का स्वरूप

स्वसंवेदन-सुव्यक्तस्, तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्त-सौख्यवानात्मा, लोका-लोक-विलोकनः।।21।।

अन्वयार्थ- **(आत्मा)** आत्मा **(स्वसंवेदन)** आत्म अनुभव द्वारा **(सुव्यक्तः)** स्पष्ट प्रगट है **(तनु)** शरीर **(मात्रः)** मात्र **(निरत्ययः)** अविनाशी है **(अत्यन्त-सौख्यवान)** अनन्त सुख वाली है **(लोकालोक)** लोक-आलोक को **(विलोकनः)** जानने देखने वाली है।

अर्थ- आत्मा आत्म अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रगट है, शरीर प्रमाण है, अविनाशी है, अनन्त सुख वाली है, लोक-अलोक को जानने देखने वाली है।

आत्म-ध्यान करने का उपाय

संयम्य करण ग्राम, मेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्याये, दात्म नैवात्मनि स्थितम्।।22।।

अन्वयार्थ- **(आत्मवान्)** आत्मा **(करणग्रामं)** इन्द्रियों के समूह को **(संयम्य)** (बाहरी विषयों से) रोककर **(चेतसः)** मन की **(एकाग्रत्वेन)** एकाग्रता से **(आत्मनि)** अपने आत्मा में **(स्थितम्)** स्थित होकर **(आत्मना)** अपनी आत्मा द्वारा **(एवं)** ही **(आत्मानं)** आत्मा का **(ध्यायेत्)** चिन्तवन (ध्यान) करें।

अर्थ-आत्मा इन्द्रियों के समूह को (बाहरी विषयों से) रोककर मन की एकाग्रता से अपने आत्मा में स्थित होकर अपनी आत्मा द्वारा ही आत्मा का ध्यान करें।

जो है उसी का दान

अज्ञानोपास्ति रज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्ध मिदं वचः।।23।।

अन्वयार्थ- **(अज्ञानः)** अज्ञानी की **(उपास्तिः)** उपासना से **(अज्ञानं)** अज्ञान **(ज्ञानिसमाश्रयः)** ज्ञानी का आश्रय लेने से **(ज्ञानं)** ज्ञान (मिलता है) क्योंकि **(इदं)** यह **(वचः)** बात **(सुप्रसिद्धम्)** अच्छी तरह से प्रसिद्ध है कि **(यस्य)** जिसके पास **(यत्)** जो **(अस्ति)** होता है (वह) **(तु)** निश्चय से, (वही) **(ददाति)** देता है।

अर्थ- अज्ञानी की उपासना से अज्ञान और ज्ञानी का आश्रय लेने से ज्ञान मिलता है (क्योंकि) यह बात अच्छी तरह से प्रसिद्ध है कि जिसके पास जो होता है, वह निश्चय से वही देता है।

आत्म ध्यान का फल

परिषहाद्य-विज्ञाना, दास्रवस्य निरोधनी।
जायतेऽध्यात्म-योगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।।24।।

अन्वयार्थ- **(अध्यात्मयोगेन)** अध्यात्म योग से **(परिषहादि)** परीषह आदि का **(अविज्ञानात्)** अनुभव न होने से **(आस्रवस्य)** आस्रव का **(निरोधिनी)** निरोध होता है (इससे) **(आशु)** शीघ्र ही **(कर्मणाम्)** कर्मों की **(निर्जरा)** निर्जरा **(जायते)** होती है।

अर्थ-अध्यात्म योग से परीषह आदि का अनुभव न होने के कारण आस्रव का निरोध होता है (इससे) शीघ्र ही कर्मों की निर्जरा होती है।

एकत्व में संबंध नहीं

कटस्य कर्त्ताहमितिसम्बन्धः स्याद्-द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, संबंधः कीदृशस्तदा।।25।।

अन्वयार्थ- **(अहं)** मैं, **(कटस्य)** चटाई का **(कर्त्ता)** बनाने वाला हूं **(इति)** इस प्रकार **(संबंधः)** कर्त्ता कर्म संबंध **(द्वयोर्द्वयोः)** भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में **(स्यात्)** होता है परन्तु **(यदा)** जब **(आत्मएव)** आत्मा ही **(ध्यानं ध्येयं)** ध्यान ध्येय है **(तदा)** तब **(संबंधः)** संबंध **(कीदृशः)** कैसा?

अर्थ- मैं चटाई का करता हूं (बनाने वाला हूं) इस प्रकार (कर्त्ता कर्म) संबंध भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में होता है जब आत्मा ही ध्यान ध्येय है, तब संबंध कैसा?

बंध और मोक्ष के कारण

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।।26।।

अन्वयार्थ- **(सममो जीवः)** ममकार सहित जीव और **(निर्ममः)** ममता रहित जीव **(क्रमात्)** क्रम से **(बध्यते)** (कर्मों से) बंधता है **(मुच्यते)** छूटता है **(तस्मात्)** इसलिये **(सर्व)** सम्पूर्ण **(प्रयत्नेन)** प्रयत्न के द्वारा **(निर्ममत्वं)** निर्ममत्वपने का **(विचिन्तयेत्)** ध्यान करना चाहिये।

अर्थ- ममकार सहित जीव और ममकार रहित जीव क्रम से (कर्मों से) बंधता है, छूटता है इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा निर्ममत्वपने का चिंतवन (ध्यान) करना चाहिये।

निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्र गोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।।27।।

अन्वयार्थ- **(अहं)** मैं **(एकः)** एक हूं **(निर्ममः)** निर्ममत्व हूं **(शुद्धो)** शुद्ध हूं **(ज्ञानी)** सम्यक् ज्ञानी हूं **(योगीन्द्र)** श्रेष्ठ योगियों द्वारा **(गोचरः)** जाना जाता हूं **(सर्वेऽपि)** सभी **(संयोगजा)** संयोग से उत्पन्न होने वाले **(भावा)** पदार्थ **(मत्तः)** मेरे से (आत्मा से) **(सर्वथा)** सब तरह से **(बाह्याः)** बाहरी (भिन्न) हैं।

अर्थ - मैं एक हूँ, निर्ममत्व हूँ, शुद्ध हूँ, सम्यग्ज्ञानी हूँ श्रेष्ठ योगियों द्वारा जाना जाता हूँ, सभी संयोग से उत्पन्न होने वाले पदार्थ मेरे से (आत्मा से) सब तरह से बाहरी (भिन्न) हैं।

संबंधों को त्यागने की प्रेरणा

दुःख-संदोह-भागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्काय-कर्मभिः।।28।।

अन्वयार्थ- **(इह)** यह **(देहिनाम्)** संसारी प्राणियों को **(संयोगात्)** संयोग से **(दुःख संदोह)** दुःखों के समूह का **(भागित्वं)** भागीदार बनना पड़ा है **(ततः)** इसलिये **(एनं)** इन **(सर्वं)** सभी को **(मनोवाक्काय)** मन, वचन, काय के **(कर्मभिः)** कार्य द्वारा **(त्याजामि)** छोड़ता हूँ।

अर्थ- यह संसारी प्राणियों को संयोग के कारण दुःखों के समूह का भागीदार बनना पड़ता है इसलिये इन सभी को मन, वचन, काय के कार्य द्वारा छोड़ता हूँ।

पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं

न मे मृत्युः कुतो भीति,-र्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाऽहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले।।29।।

अन्वयार्थ- **(मे)** मेरी **(मृत्युः)** मृत्यु **(न)** नहीं है तब मुझे **(भीतिः)** भय **(कुतो)** कैसा? **(मे)** मेरे कोई **(व्याधिः)** रोग **(न)** नहीं है, **(व्यथा)** कष्ट **(कुतो)** कैसा, (किसका) **(अहम्)** मैं **(बालःन)** बालक नहीं हूं **(अहं)** मैं **(वृद्धः)** वृद्ध **(न)** नहीं हूं **(युवः)** युवक **(न)** नहीं हूं **(एतानि)** ये सब **(पुद्गले)** पुद्गल में होते हैं।

अर्थ- मेरी मृत्यु नहीं है तब मुझे भय किसका? मेरे कोई रोग नहीं है तब कष्ट किसका? मैं बालक नहीं हूं, वृद्ध नहीं हूं, युवक नहीं हूं, ये सब पुद्गल में होते हैं।

ज्ञान की अनासक्त बुद्धि

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्-मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।।30।।

अन्वयार्थ- **(सर्वेऽपि)** सभी **(पुद्गलाः)** पुद्गल पदार्थ **(मया)** मेरे द्वारा **(मोहात्)** मोह से **(मुहुः)** बार-बार **(भुक्तः)** भोगकर **(उज्झिता)** छोड़ दिये गए हैं, (फिर) **(अद्य)** आज **(उच्छिष्टेषु)** जूठन के **(इव)** समान **(तेषु)** उन पुद्गलों में **(मम)** मुझ **(विज्ञस्य)** बुद्धिमान (ज्ञानी) की **(का)** क्या **(स्पृहा)** अभिलाषा (इच्छा) है? अर्थात् कुछ नहीं है।

अर्थ-सभी पुद्गल पदार्थ मेरे द्वारा मोह से बार-बार भोग कर छोड़ दिए गए हैं (फिर) जूठन के समान उन पुद्गलों में मुझ बुद्धिमान (ज्ञानी) की अब क्या अभिलाषा? अर्थात् कुछ इच्छा नहीं है।

सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं

कर्म कर्महिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वांछति।।31।।

अन्वयार्थ- **(कर्म)** कर्म (अपने) **(हिता)** हित रूप **(कर्म)** कर्म को **(बन्धि)** बांधता है **(जीवः)** जीव (आत्मा) **(जीव)** जीव (आत्मा) के **(हित)** हित की **(स्पृहः)** इच्छा करता है **(स्व स्व)** अपने-अपने **(प्रभाव)** प्रभाव के **(भूयस्त्वे)** होने पर **(को वा)** कौन सा व्यक्ति अपना **(स्वार्थं)** हित **(न वांछति)** नहीं चाहता है? सभी चाहते हैं।

अर्थ-कर्म अपने हित रूप कर्म को बांधता है जीव (आत्मा) जीव के हित की इच्छा करता है (क्योंकि) अपने-अपने प्रभाव के होने पर कौन सा व्यक्ति अपना हित नहीं चाहता? अर्थात् सभी अपना हित चाहते हैं।

आत्मोपकारी बनने का उपदेश

परोपकृति मुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो, दृश्य मानस्य लोकवत्।।32।।

अन्वयार्थ- **(परोपकृर्ति)** पर के उपकार करने का **(उत्सृज्य)** त्याग करके **(स्व)** अपने **(उपकार)** उपकार में **(परो)** लीन (तत्पर) **(भव)** हो जा (क्योंकि) **(दृश्य मानस्य)** दिखाई देने वाले **(लोकवत्)** संसार के समान **(अज्ञ)** अज्ञानी प्राणी **(परस्य)** दूसरे का **(उपकुर्वन्)** उपकार करता हुआ पाया जाता है।

अर्थ- पर के उपकार करने का त्याग करके अपने उपकार में लीन **(तत्पर)** हो क्योंकि दिखाई देने वाले संसार के समान अज्ञानी प्राणी दूसरे का उपकार करता हुआ पाया जाता है।

भेद-विज्ञान का उपाय और फल

गुरुपदेशा-दभ्यासात्, संवित्तेः स्व-परान्तरम्।
जानाति-यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।।33।।

अन्वयार्थ- **(यः)** जो **(गुरुपदेशात्)** गुरु के उपदेश से **(अभ्यासात्)** अभ्यास से **(संवित्ते)** आत्मज्ञान से **(स्वपर)** अपने और पर पदार्थों के **(अंतरं)** अंतर को **(जानाति)** जानता है **(स)** वह **(निरन्तरम्)** सदा, (हमेशा) **(मोक्षसौख्यं)** मोक्ष के सुख को जानता है।

अर्थ- जो **(जीव)** गुरु के उपदेश से, अभ्यास से, आत्म ज्ञान से, अपने और पर पदार्थों के अंतर को जानता है वह हमेशा मोक्ष के सुख को जानता है।

निजात्मा ही गुरु है

स्वस्मिन् सदाभिलाषित्वादभीष्ट ज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः।।34।।

अन्वयार्थ- **(स्वस्मिन्)** अपनी आत्मा की **(सत्)** श्रेष्ठ (कल्याण की) **(अभिलाषित्वाद्)** अभिलाषा होने से **(अभीष्ट)** अपने परम प्रिय पदार्थ आत्मा का **(ज्ञापकत्वतः)** जानने वाला होने से **(स्वयं)** अपने आप अपने **(हित)** हित का **(प्रयोक्तृत्वात्)** प्रयोग करने वाला होने से **(आत्मैव)** आत्मा ही **(आत्मनः)** आत्मा का (गुरुः) गुरु है।

अर्थ-अपनी आत्मा की श्रेष्ठ (**कल्याण की**) अभिलाषा होने से अपने प्रिय पदार्थ आत्मा को जानने वाला होने से, अपने आप अपने हित का प्रयोग करने वाला होने से आत्मा ही आत्मा का गुरु है।

निमित्त सहायक मात्र है

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्व मृच्छति।
निमित्त-मात्र-मन्यस्तु, गते-र्धर्मास्ति-काय-वत्।।35।।

अन्वयार्थ- **(अज्ञः)** अज्ञानी **(विज्ञत्वं)** ज्ञानीपने को **(न आयाति)** प्राप्त नहीं होता और **(विज्ञः)** ज्ञानी **(अज्ञत्वं)** अज्ञानपने को **(न ऋच्छति)** प्राप्त नहीं होता **(अन्यः)** अन्य (गुरु आदि) **(तु गतेः)** तो चलने में **(धर्मास्ति कायवत्)** धर्मास्ति काय के समान **(निमित्त मात्रं)** निमित्त मात्र है।

अर्थ- अज्ञानी ज्ञानपने को प्राप्त नहीं होता और ज्ञानी अज्ञानपने को प्राप्त नहीं होता अन्य **(गुरु आदि)** तो चलने में धर्मास्तिकाय के समान निमित्त मात्र है।

निजात्मा चिंतन कौन कैसे करें

अभवच्चित्त विक्षेप, एकान्ते तव संस्थितिः।
अभ्यस्येदभि-योगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः।।36।।

अन्वयार्थ- **(चित्त)** चित (मन में) **(विक्षेप)** क्षोभ **(अभवत्)** न होने पर **(तत्त्वं)** तत्त्व विचार में **(संस्थितिः)** जिसकी बुद्धि अच्छी तरह स्थिर है ऐसा **(योगी)** साधु **(एकांते)** एकांत में **(अभियोगेन)** आलस्य त्याग कर **(निजात्मनः)** अपनी आत्मा के **(तत्त्वं)** आत्म तत्त्व के चिंतवन का **(अभ्यस्येत्)** अभ्यास करे।

अर्थ-चित्त (मन) में क्षोभ न होने पर तत्त्व विचार में जिसकी बुद्धि अच्छी तरह स्थिर है ऐसा योगी एकान्त में आलस्य त्याग कर अपने आत्म तत्त्व के चिंतवन का अभ्यास करे।

आत्म संवित्ति की पहिचान

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्व मुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।।37।।

अन्वयार्थ- **(यथा यथा)** जैसे-जैसे **(संवित्तौ)** आत्म ज्ञान में **(उत्तमम्)** उत्तम **(तत्त्वं)** तत्त्व **(समायाति)** समाविष्ट होता है **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(सुलभा अपि)** सुलभता से प्राप्त होते हुए भी **(विषयाः)** विषय भोग **(न रोचन्ते)** रुचते नहीं है।

अर्थ- जैसे-जैसे आत्म ज्ञान में उत्तम तत्त्व समाविष्ट होता है वैसे-वैसे सुलभता से प्राप्त होते हुए भी विषय भोग रुचते नहीं है।

आत्म संवित्ति की पहिचान

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्व मुत्तमम्।।38।।

अन्वयार्थ- **(यथा यथा)** जैसे-जैसे **(सुलभा)** सुलभ **(विषयाः अपि)** विषय भी **(न रोचन्ते)** आत्मा को रुचते नहीं हैं **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(संवित्तौ)** आत्म ज्ञान में **(उत्तमम्)** श्रेष्ठ **(तत्त्वं)** आत्मा का स्वरूप **(समायाति)** प्रतिभास होने लगता है।

अर्थ-जैसे-जैसे सुलभ विषय भोग भी नहीं रुचते वैसे-वैसे आत्म ज्ञान में श्रेष्ठ आत्मा का स्वरूप समाविष्ट होता है।

अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति

निशामयति निश्शेष मिन्द्र-जालोपमं जगत्।
स्पृह-यत्यात्म-लाभाय गत्वा-न्यत्रानु-तप्यते।।39।।

अन्वयार्थ- (निश्शेषं) सम्पूर्ण **(जगत्)** संसार **(इन्द्र जालोपमं)** इन्द्र जाल की तरह, (निःसार) **(निशामयति)** दिखाई देता है तब **(आत्म लाभाय)**

आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए **(स्पृहयति)** अभिलाषा होती है, **(कदाचित्)** **(अन्यत्र)** अन्यत्र (किसी विषय में) **(गत्वा)** जाकर, (मन) **(अनुतप्यते)** संतप्त **(व्याकुल)** होता है।

अर्थ- जब सम्पूर्ण संसार इन्द्रजाल की तरह निःसार दिखाई देता है तब आत्मा स्वरूप की प्राप्ति के लिए अभिलाषा होती है कदाचित् किसी विषय में **(अन्यत्र)** जाने पर मन संतप्त **(व्याकुल)** होता है।

योगी की निर्जन प्रियता

इच्छत्येकांत संवासं, निर्जनं जनितादरः।
निज कार्य वशात्किंच, दुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।।40।।

अन्वयार्थ- **(निर्जनं)** निर्जन स्थान को **(जनितः)** पाकर (जिनका मन) **(आदरः)** खुश है और **(एकांत)** एकांत में **(संवासं)** रहने की **(इच्छति)** इच्छा करते हैं (ऐसा महान पुरुष) **(निज कार्य)** अपने कार्य के **(वशात्)** वश से **(किंचित्)** थोड़ा कुछ **(उक्त्वा)** कहकर **(द्रुतं)** शीघ्र ही **(विस्मरति)** भूल जाते हैं।

अर्थ- निर्जन वन को पाकर जिनका मन खुश है और एकांत में रहने की इच्छा करते हैं (ऐसे महान पुरुष) अपने कार्य के वश थोड़ा कुछ कहकर शीघ्र ही भूल जाते हैं।

स्वरूप-निष्ट योगी की विशेषता

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरी-कृतात्म-तत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।।41।।

अन्वयार्थ- **(तु)** निश्चय से **(आत्म तत्त्वः)** आत्म तत्त्व में **(स्थिरीकृत)** स्थिर रहने वाला तो **(ब्रुवन् अपि)** बोलता हुआ भी **(न ब्रूते)** नहीं बोलता है **(गच्छन् अपि)** चलता हुआ भी **(न)** नहीं **(गच्छति)** चलता है **(पश्यन् अपि)** देखता हुआ भी **(न पश्यति)** नहीं देखता है।

अर्थ- निश्चय से आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला तो बोलता हुआ भी नहीं बोलता, चलता हुआ भी नहीं चलता, देखता हुआ भी नहीं देखाता है।

योगी की निर्विकल्प दशा

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्य-विशेषयन्।
स्वदेह-मपि नावैति, योगी योग-परायणः।।42।।

अन्वयार्थ- **(योग परायणः योगी)** योग, (आत्मध्यान) में लीन योगी साधु **(इदम्)** यह **(किम्)** क्या है **(कीदृशं)** कैसा है **(कस्य)** किसका

है **(कस्मात्)** किस कारण से है **(क्व)** कहां है **(इति)** इस तरह **(अविशेषयन्)** विशेष विचार न करता हुआ **(स्वदेहं)** अपने शरीर को **(अपि)** भी **(न अवैति)** नहीं जानता है।

अर्थ-आत्म ध्यान **(योग)** में लीन साधु यह क्या है? कैसा है? किसका है? किस कारण से है? कहां है? इस तरह विचार न करता हुआ अपने शरीर को भी नहीं जानता है।

जो जहाँ रहे वहाँ रम जाता

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मा-दन्यत्र स न गच्छति।।43।।

अन्वयार्थ- **(यः)** जो जीव **(यत्र)** जहाँ पर **(निवसन्)** निवास करता **(आस्ते)** है **(स तत्र)** वह उस स्थान पर **(रतिम्)** प्रीति **(कुरुते)** करता है **(यः)** जो **(यत्र)** जहाँ **(रमते)** रम जाता है **(तस्मात्)** इसलिए **(सः)** वह उस स्थान से **(अन्यत्र)** अन्य जगह **(न गच्छति)** नहीं जाता है।

अर्थ- जो जीव जहाँ पर निवास करता है, वह उस स्थान पर प्रीति करता है और जो जहाँ रम जाता है। इसलिये वह उस स्थान से अन्यत्र नहीं जाता है।

साम्य भावी योगी छूटता है

अगच्छंस्तद्विशेषाणा-मन-भिज्ञश्च जायते।
अज्ञात-तद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते।।44।।

अन्वयार्थ- **(तत्)** उन पर पदार्थों के **(विशेषाणाम्)** विशेषणों को **(अगच्छन्)** न जानता हुआ **(अनभिज्ञः)** अजानकार **(जायते)** हो जाता है **(च)** और **(तद्विशेषः)** उन विशेषताओं को **(अज्ञात तु)** न समझने वाला तो **(न बध्यते)** बँधता नहीं है बल्कि **(विमुच्यते)** छूट जाता है।

अर्थ- योगी उन पर पदार्थों के विशेषणों को न जानता हुआ अजानकार (अनभिज्ञ) हो जाता है और उन विशेषताओं को न समझने वाला तो (कर्मों से) बँधता नहीं है, बल्कि छूट जाता है।

सुख दुःख के आधार

परः परस्ततो दुःख, मात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्-तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।।45।।

अन्वयार्थ- **(परः)** अन्य पदार्थ **(परः)** (आत्मा से) अन्य है **(ततः)** उससे **(दुःखम्)** दुःख होता है और **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(आत्मा)** अपनी आत्मा है **(ततः)** उससे **(सुखम्)** सुख होता है **(अत एव)** इस कारण से **(महात्मानः)** महान पुरुषों ने **(तन्निमित्तं)** उस आत्मा की प्राप्ति के लिये **(कृतोद्यमाः)** प्रयत्न किया था।

अर्थ- पर पदार्थ आत्मा से अन्य है इसलिये उनसे दुःख होता है और आत्मा ही अपनी है इसलिये उससे सुख होता है इस कारण से महान पुरुषों ने उस आत्मा की प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया था।

पर से अनुराग का फल

अविद्वान्-पुद्गल-द्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुंचति।।46।।

अन्वयार्थ- **(यः)** जो **(अविद्वान्)** मूर्ख (बहिरात्मा) **(पुद्गल द्रव्यं)** पुद्गल द्रव्य का **(अभिनन्दति)** अभिनन्दन (श्रद्धान) करता है **(तस्य जन्तोः)** उस बहिरात्मा प्राणी का **(तत्)** वह (शरीरादि), पुद्गल द्रव्य **(जातु)** कभी भी **(चतुर्गतिषु)** चारों गतियों में **(सामीप्यं)** साथ **(न मुंचति)** नहीं छोड़ता है।

अर्थ- जो मूर्ख (बहिरात्मा) पुद्गल द्रव्य का अभिनन्दन (श्रद्धान) करता है उस प्राणी का वह (शरीर आदि) पुद्गल द्रव्य कभी भी चारों गतियों में साथ नहीं छोड़ता है।

आत्म निष्ठता का फल

आत्मानुष्ठान-निष्ठस्य व्यवहार-बहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः।।47।।

अन्वयार्थ- (**व्यवहार**) व्यवहार चारित्र से **(बहिः)** बाहर **(स्थितेः)** ठहरे हुए **(आत्मानुष्ठान)** आत्म ध्यान में **(निष्ठस्य)** लवलीन **(योगिनः)** मुनि के **(योगेन)** योग **(आत्म ध्यान)** के द्वारा **(कश्चित्)** कोई अपूर्व **(परमानन्दः)** परम आनन्द **(जायते)** उत्पन्न होता है।

अर्थ- व्यवहार चारित्र से बाहर ठहरे हुए और आत्म ध्यान में लवलीन मुनि के योग (आत्मध्यान) के द्वारा कोई अपूर्व परम आनन्द उत्पन्न होता है।

उस आनंद का कार्य

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धन मनारतं।
न चाऽसौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतनः।।48।।

अन्वयार्थ- **(आनंदः)** आत्म ध्यान का आनंद **(अनारतम्)** निरंतर **(उद्धं)** बहुत से **(कर्मेन्धनम्)** कर्म रूपी ईंधन को **(निर्दहति)** जलाता है **(तथा)** **(बहिर्दुःखेषु)** बाहरी दुःखों (परीषहादि) से **(अचेतनः)** अनभिज्ञ **(असौ)** वह (आत्म ध्यानी) **(योगी)** मुनिराज (साधु) **(न खिद्यते)** खेद खिन्न नहीं होता।

अर्थ- आत्म ध्यान का आनंद निरंतर बहुत से कर्म रूपी ईंधन को जलाता है तथा बाहरी (परिषह) आदि दुःखों से अनभिज्ञ वह (आत्म ध्यानी) साधु खेद खिन्न नहीं होता।

मुमुक्षु क्या करें?

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।।49।।

अन्वयार्थ- **(अविद्या)** अज्ञान रूप (अन्धकार) को **(भिदुरं)** नष्ट करने वाली **(परं ज्योतिः)** आत्मा की उत्कृष्ट ज्योति **(महत्)** महान **(ज्ञानमयं)** ज्ञान रूप है **(मुमुक्षुभिः)** मोक्ष अभिलाषी (पुरुषों को) के लिये **(तत्)** वह, (उसी के विषय में) **(प्रष्टव्यं)** पूछना चाहिए **(तत्)** उसी को **(इष्टव्यं)** पाने का प्रयत्न करना चाहिए **(तत्)** उसी का **(द्रष्टव्यं)** दर्शन करना चाहिए।

अर्थ- अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट करने वाली आत्मा की उत्कृष्ट ज्योति महान ज्ञान रूप है। मोक्षाभिलाषी पुरुषों के लिए वही (उसी के विषय में) पूछना चाहिये, उसी को पाने का प्रयत्न करना चाहिये उसी का दर्शन करना चाहिये।

तत्त्व का सार

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्व संग्रहः।
यदन्य-दुच्यते किंचित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।।50।।

अन्वयार्थ- **(जीवः)** जीव **(अन्यः)** अन्य है **(च)** और **(पुद्गलः अन्यः)** पुद्गल अन्य है **(इति)** इस प्रकार **(असौ)** यह **(तत्त्व संग्रहः)**

तत्त्व का सार (संग्रह) है इसके अलावा **(यत्)** जो **(किंचित्)** कुछ भी **(अन्यत्)** अन्य (**उच्यते**) कहा जाता है **(सः)** वह **(तस्य एव)** उसका ही **(विस्तरः अस्तु)** विस्तार है।

अर्थ- जीव अन्य है और पुद्‌गल अन्य है इस प्रकार यह तत्त्व का सार **(संग्रह)** है इसके अलावा जो कुछ भी अन्य कहा जाता है वह सब उसका ही विस्तार है।

इष्टोपदेश ग्रन्थ के अध्ययन का फल

इष्टोपदेश-मिति सम्यग्धीत्य धीमान्, मानापमान समतां स्व मताद्वितन्य।
मुक्ता-ग्रहो विनि-वसन् सजने वने वा, मुक्ति-श्रियं निरुपमा मुपयाति भव्यः।।51।।

अन्वयार्थ- (धीमान्) बुद्धिमान **(भव्यः)** भव्य पुरुष **(इति)** इस प्रकार **(इष्टोपदेश)** इष्टोपदेश ग्रंथ को **(सम्यक्)** अच्छी तरह **(अधीत्य)** पढ़कर के **(स्वमतात्)** अपने आत्मज्ञान से **(मानापमान)** मान-अपमान के **(समतां)** समता भाव को **(वितन्य)** फैलाकर **(मुक्ताग्रहः)** आग्रह को त्यागता हुआ **(सजने)** गाँव आदि में **(वा)** वन में **(विनिवसन्)** रहता हुआ **(निरुपमां)** उपमा रहित (अनुपम) **(मुक्ति श्रियम्)** मुक्ति लक्ष्मी को **(उपयाति)** प्राप्त करता है।

अर्थ- बुद्धिमान भव्य पुरुष इस प्रकार इष्टोपदेश ग्रंथ को अच्छी तरह पढ़कर के अपने आत्मज्ञान से मान-अपमान के समता भाव को फैलाकर आग्रह को त्यागता हुआ गाँव आदि में अथवा वन में निवास करता हुआ उपमा रहित (अनुपम) मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

।।इति इष्टोपदेश समाप्तम्।।

उपसर्ग विजेता परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य
1.	संस्कृत सर्वोदया टीका (वारसाणुवेक्खा) भाग 1-2	150
2.	संस्कृत रत्नत्रयवर्धिनी टीका (रयणसार) भाग 1-2	185
3.	संस्कृत श्रमणप्रबोधनी टीका (पाहुडद्वय)	
	(शोधपूर्ण साहित्य)	
4.	शुद्धोपयोग	40
5.	सम्यग्दर्शन	35
6.	आगम चक्खू साहू	25
7.	सल्लेखना से समाधि	30
8.	संत साधना के प्रेरक प्रसंग	20
9.	परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	45
10.	सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म	30
11.	तीर्थंकर दिव्य दर्शन	30
12.	तीर्थंकर दर्शन	
13.	व्यसन विचार	25
14.	फूल नहीं, हैं काँटे	
15.	संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती, मराठी)	18
16.	जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन	10
17.	आध्यात्मिक शंका-समाधान	30
18.	आध्यात्मिक तत्त्व-चर्चा	40
	(चिंतन साहित्य)	
19.	चैतन्य चिन्तन भाग-1	15
20.	चैतन्य चिन्तन भाग-2	15
21.	चैतन्य चिन्तन भाग-3	15
	(बालोपयोगी साहित्य)	
22.	बाल विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़)	10
23.	बाल विज्ञान भाग-2 (हिन्दी, इंग्लिश)	10

24.	बाल विज्ञान भाग–3	10
25.	बाल विज्ञान भाग–4	10
26.	कर्म विज्ञान भाग–1 (हिन्दी, इंग्लिश)	10
27.	कर्म विज्ञान भाग–2	10
28.	कर्म विज्ञान भाग–3	10

(कथा साहित्य)

29.	नैतिक कथा मंजूषा भाग–1	30
30.	नैतिक कथा मंजूषा भाग–2	30

(अनुवाद साहित्य)

31.	वारसाणुवेक्खा	
32.	परमरत्नार्चना संग्रह	20
33.	सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती)	10

(पद्य साहित्य)

34.	भावों के विशुद्ध क्षण	15
35.	मुक्ताञ्जलि भाग–1	15
36.	मुक्ताञ्जलि भाग–2	15
37.	नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा	

(संकलित/सम्पादित साहित्य)

38.	साधना से समाधि	20
39.	विमल नित्य पाठावलि	25
40.	आराधना	35
41.	सुभाषित संग्रह	40
42.	आप्त अर्चना	
43.	मानतुंग की अमर भक्ति (सचित्र भक्तामर)	65
44.	साधना	10
45.	अनुप्रेक्षा	10
46.	जिनागम दीप	251
47.	सम्मेद शिखर विधान	
48.	चारित्र शुद्धि व्रत	25
49.	करुणामूर्ति सन्त	100
50.	तपस्वी सम्राट	10

51.	यज्ञोपवीत विधि	
52.	साधना के सोपान	
53.	पदम् पुराण प्रश्नोत्तरी	100
54.	स्तोत्र भारती	51

(एकांकी/नाटक साहित्य)

55.	सत्यमित्र-सत्यदृष्टि	
56.	प्रद्युम्न हरण	

(पूज्य आचार्य श्री पर आधारित साहित्य)

57.	विरागाभिवंदन अभिनंदन	
58.	निस्पृही संत भाग-1-2	60
59.	विराग सेतु (महाकाव्य) (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) भाग-1 100	
60.	विराग सेतु (महाकाव्य) भाग-2	
61.	संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर	65
62.	कमल से महाकमल	
63.	घटनायें ये जीवन की	80
64.	दिगम्बरत्व के चितेरे	150
65.	विराग सिंधु की उर्मियाँ	15
66.	विराग वाटिका	41
67.	भक्ति की झंकार	25
68.	विराग काव्यांजलि	
69.	धर्म पीयूष	30
70.	ऐसे चलो मिलेगी राह	40
71.	दूर नहीं है मंजिल	30
72.	उड़ रे पंछी	10
73.	तीर्थंकर वर्धमान	15
74.	पहले देव-पूजा फिर काम दूजा	25
75.	तीर्थंकर ऐसे बनो	60
76.	तट की ओर	10
77.	सिर्फ दो प्रवचन	10
78.	इष्टोपदेश (प्रवचन)	
79.	मानतुंग की अमरभक्ति	150

80.	कल्याणक महोत्सव	20
81.	दान तीर्थ	20
82.	धर्म के दश सोपान	20
83.	जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो	20
84.	बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति	10
85.	प्रवचन वर्षा	25
86.	कर्तव्यमेव कर्तव्यं	25
87.	श्रद्धा प्रसून	25
88.	मोक्ष की राह	25
89.	विरागामृत-1	30
90.	विरागामृत-2	
100.	समाधि तंत्र (प्रवचन)	
101.	समयोचित शिक्षायें भाग-1	20
102.	समयोचित शिक्षायें भाग-2	20
103.	समयोचित शिक्षायें भाग-3	20
104.	विराग मंथन (हिन्दी, अंग्रेजी)	5
105.	रजत पुष्प	51
106.	कहानी सबसे सुहानी	30
107.	अक्षय निधि (हिन्दी, अंग्रेजी)	10
108.	संस्कार की लहरें	20
109.	चलो चलें प्रभु दर्शन को	30
110.	आध्यात्मिक धर्म प्रवचन	30
111.	घर-घर की कहानी	30
112.	वारसाणुवेक्खा प्रवचन	125
113.	पर्यूषण निधि	15
114.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 1. धर्मोपदेशामृतम्	200
115.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 2. दानोपदेशम्	40
116.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 3. अनित्य पञ्चाशत्	50
117.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 4-5. एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम्	85
118.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 6. उपासक संस्कार	60

119.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 7. देशव्रतोद्योतनम्	60
120.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 8-9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना	85
121.	मेरी भावना	
122.	आचार्य विराग सागर साहित्य दर्शन	10
123.	मेरी भावना प्रवचन	
124.	फॉर यूथ प्रोग्रेस	22
125.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रवचन भाग-1	100
126.	सामायिक पाठ प्रवचन	85
127.	विराग संध्या	20
128.	विराग अर्चना	40
129.	स्वर्ग पुष्प	30
130.	षट्लेश्या प्रवचन	
131.	ऐसे बनायें घर को स्वर्ग	
132.	क्यूँ इतना अभिमान है....	30
133.	सिद्धों का खजाना	30
134.	अपने नैतिक कर्त्तव्य	30
135.	श्रुतज्ञानवर्धक विधान	20

Video D.V.D

1. आचार्य पदारोहण द्रोणगिरि
2. राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा जयन्ती, उद्गाँव
3. उपसर्ग पर उत्कर्ष की यात्रा
4. आर्यिका विशाान्तश्री माताजी, समाधि
5. व्यसन मुक्ति शाकाहार अभियान
6. लोक और मध्यलोक
7. ज्योतिर्लोक और चन्द्रयात्रा
8. जेल प्रवचन
9. स्कूल प्रवचन
10. शाकाहार रैली
11. अहिंसा रैली

12. न्यायालय में प्रवचन
13. 25 दीक्षायें- श्रवणबेलगोला
14. 11 दीक्षायें-गाँधीनगर
15. 8 दीक्षायें-गिरनारजी
16. 11 दीक्षायें-किशनगढ़
17. 26 दीक्षायें-उदयपुर
18. 25 दीक्षायें-जयपुर
19. 8 दीक्षायें-इन्दौर
20. स्वर्णिम जन्म जयन्ती
21. सिद्धांत एवं आध्यात्मिक प्रवचन
22. मातृभक्ति
    (वारसाणुवेक्खा, सामायिक पाठ,
23. देश के नाम कलंक बूचड़खाने तत्त्वार्थ सूत्र, पद्मनंदि पंचविंशतिका भाग-1-14)

Audio DVD

1. श्यामा के लाल
2. साधना के सरताज
3. गुरुवर का जयकारा
4. प्रवचन वर्षा (दशधर्म, सोलहकारण)
5. श्री विराग सागर नमोऽस्तु ते
6. करें गुरु भक्ति
7. चलें गुरुवर के द्वार
8. गीत गुरु के गायेंगे
9. जियो हजारों साल गुरुवर
10. मेरे मन वीणा के तारे
11. विराग स्वर्णोत्सव
12. रजतवर्ष मुनिदीक्षा का
13. आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज पूजा
14. हे सन्मति-सन्मति दो
15. स्वर्णिम जयन्ती याद रहेगी
16. प्रथम सूरि बुंदेलखण्ड के
17. गुरु नाम की धूम मची है

साहित्य प्राप्ति स्थान

1. **श्री सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ**
   चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
   सम्पर्क सूत्र : पं. वीरेन्द्र जैन (मो. 9754803220)

2. **आचार्य श्री विराग सागर विद्यापीठ (बी.एड.कॉलेज)**
   पुष्प विहार कॉलोनी, बीना-470113, जिला-सागर (म.प्र.)

3. **विराग फाउण्डेशन,** द्वारा-श्री अरुण कोटड़िया, II-A विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380013 (गुजरात)

4. **श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह,** 12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुजरात) सम्पर्क सूत्र- श्री भूपेन्द्र शाह (मो. 9898494914, 9829452020)

5. **विराग महिला मंच,** बोरीवली, मुम्बई (महा.)

6. **श्रीमती पुष्पा पाटनी,** 574, शांतिनगर, जैन मंदिर के सामने,
   गोपालपुर वायपास, जयपुर (राज.) मो. 09460765050

7. **श्री मनीष पाटनी,** नया बाजार, 54, धर्मकांटा के पास, अजमेर (राज.)
   मो. 09414002306

8. **श्री तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, विष्णु व्यास**
   मोहता हॉस्पिटल के पास, मोहता चौक, बीकानेर (राज.) मो. 9314962475

9. **राष्ट्रीय विराग युवा मंच, अध्यक्ष - श्री राजेश जैन**
   अंजनी नगर, इन्दौर मो. 09425316970

10. **राष्ट्रीय युवा मंच अध्यक्ष - श्री पंकज पाटनी**
    72, विंध्याचल नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर मो. 09425476665

11. **डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'**
    22/2, रामगंज, जिन्सी, इन्दौर-7 मो. 09826091247